IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882
INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

हिन्दी काव्य में जीव–जगत सम्बन्धी विचार

सीमा मिश्रा
विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग,
बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार–842001

यह शरीर विकार और रोगग्रस्त है। इसमें भेद मज्जा, मांस, रक्त आदि पेटियां है। यह हाड़ का पिंजरा है जो चाम से मढ़ दिया गया है। तू इस पर इतना घमंड क्यों करता है।[1] अरे तू इतनी कठिन स्थिति को भूल क्यों गया –

अन्धे सो दिन काहे भुलायों रे।
जा दि गर्भ हेतों ऊँधै मुख, रक्त पीत लपटायौ रे।
बालपनै कछु सुधि नहीं कीनी, मात–पिता हुलरायौ रे।
× × ×
बिरध भयौ सिर कंपन लागौ, मरनै कौ दिन आयौ रे।
'सुन्दरदास' कहै समुझावै, कबहुं राम न गायौ रे।[2]

सुन्दरदास का कहना है कि जीव इस संसार में आता है तो आते ही माया, मोह के पाश में बँध जाता है। वह अपने–आप को भूल जाता है। जब उसे ब्रह्म रूपी आत्मा ज्ञान होता है तो वह अपने लक्ष्य या उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जुट जाता है और स्व को जान लेता है। इस प्रकार उसे ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है।

जगत का विकास क्रम सांख्यय में वर्णित है। सुन्दरदास सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में कहते हैं कि – हे जगद्गुरु, इस जगत की रचना कैसे की है? किस तत्व को पहले उत्पन्न किया है? पहले प्रकृति उत्पन्न हुई अथवा पुरुष या सत्व, रज और तम एक साथ उत्पन्न किया। तुमने आकाश, वायु तेज, जल और पृथ्वी की रचना की। क्या तुम्हीं ने दस इन्द्रियों और अन्तःकरण का निर्माण किया?[3] इस सबका उत्तर देते हुए वे कहते हैं कि – ब्रह्म से पुरुष और प्रकृति उत्पन्न हुई। प्रकृति ने महतत्व अहंकार को जन्म दिया। अहंकार से सत्व, रज और तम हुए, तम से महाभूत स्वरूप विषय–प्रसार उत्पन्न हुआ। रज से दस इन्द्रियों की रचना और सत्व से मन आदि देवताओं को उत्पन्न किया गया।

ब्रह्म तें पुरुष अरू प्रकृति प्रगट भइ।
प्रकृति ते महतत्व पुनि अहंकार है।।
अहंकार ह् ते तीन गुन सत्व रज तम।
तम हूँ ते महाभूत विषय प्रसार है।।
रज हूँ ते इन्द्रिय दश पृथक् पृथक भई।
सत्व हूँ ते मन आदि देवता विचार है।।[4]

सुन्दर दास ने 'ज्ञान समुद्र' में भी अपने इसी मत की स्थापना की है। इसमें पंचतत्वों के गुणों की चर्चा की है। उनके अनुसार आकाश का गुण शब्द है, वायु का गुण शब्द और स्पर्श है। पावक में इन दोनों का रूप है और जल में शब्द स्पर्श रूप और रस का। पृथ्वी में इन पाँचों की उपस्थिति पाई जाती ह –

शब्द गुणो आकाश एक गुण कहियत जागहिं। शब्द स्पर्श वायु उभय गुण लहियत तामहिं।।
पुनि शब्द स्पर्श जु रूप रस गन्ध पंचगुण अवनि है। शिष्य इहै अनुक्रम जानि तूं सम ऐसैं कहे।।[5]

सुन्दरदास ने जीव का वर्णन आध्यात्मिक के रूप में किया है। वे इन साधकों की तीन श्रेणियाँ मानते हैं – कौतूहलिक, जिज्ञास, और मोझा। इसी तरह से यह भी मानते हैं कि भक्ति उपासनापरक है। यह उपासना एक मानसिक पूजा है। उन्होंने कहा है कि उपासना परक भक्ति के चार अंग होते हैं – त्याग, बैराग्य, समता और सत–सत्ता। आरम्भ की तीन अवस्थायें भक्ति की साधना की अवस्थायें हैं। जब साधक और साध्य दोनों की समाप्त हो जाते हैं तो अद्वैत की सिद्धावस्था प्रगट होती है। इस दशा में जगत का प्रपंच होता है और सुरति का योग भी होता है। साधक इन दोनों के बीच में सन्तुलन स्थापित करता है। सिद्धावस्था ही उपासना की परम अवस्था होती है। सुन्दरदास यह मानते हं कि जब शुद्ध भक्ति का जन्म होता है तभी अद्वैत की स्थिति सम्भव हो पाती है। उन्होंने सर्वांग योग में कहा है कि जैसे पनिहारिन घड को सिर पर धारण करती है वैसे ही सुरति के घट को साधक लेता है और उसमें मन के लय को व्यक्त करता है।

जैसे कुम्भ लेइ पनिहारी। सिरि धरि हँसे देइ कर तारी।
सुरति रहै गागरि कै मांझा। यौ जन लय लावै दिन संझा।[6]

इससे स्पष्ट है कि सुन्दरदास ने ब्रह्म की अनुरक्ति को ही परम माना है। यहाँ कर्तापन का भाव लुप्त हो जाता है। यही निष्काम कर्म की अवधारणा है। सुन्दरदास जी की जीव विषयक इस अवधारणा में भक्त, साधक और निष्काम कर्मयोगी की बात कही गयी है।

वे मानते हैं कि इस संसार से विरक्त होने के बाद ही इस ब्रह्म की प्राप्ति होती है। 'गृह वैराग्य बोध' नामक एक ग्रन्थ में वे विरक्ति के मार्ग का समर्थन करते हैं। उस ब्रह्म की प्राप्ति के लिए अगृहि होना पड़ता है। यह अनासक्त कर्म और वितराग होने का मार्ग है। एक छन्द में वे गृही और वैरागी का संवाद कराते हैं। गृहो अपनी असक्तियों को कहता है और वैरागी सभी आसक्तियों मं विरक्ति का भाव देखता है –

गृही कहै जु चन्द बदनी प्रिय अंग अंग छवि सीहै जू।
चन्दन लेपन कुच मंडल पर देव दानव मोहै जू।।
वैरागी कहै नव द्वार मैं
निश दिन नरक बहाई जू।
लोहू माँस कुचन के भीतर ताकी कहाँ बड़ाई जू।।
– *उद्धृत, गृह वैराग्य बोध*

सुन्दरदास विरक्तियों पर ही विशेष बल देते हैं। नारी के अंगों में विरक्ति का भाव देखना उनका सबसे बड़ा लक्ष्य है। जिस नारी में आसक्ति देखी जाती है उसे मातृत्व की शक्ति मान लेने से ऊर्जा की प्राप्ति होती है। सुन्दरदास ने नारी में विरक्ति का धर्म ही प्रधान माना है। वे कहते हैं कि वैरागी गृहस्थ कम होता है क्योंकि विरक्त भगवान का काम करता है और गृही को उसकी सेवा करनी चाहिए –

विरक्त धर्म रहै जु गृही तें गृही कौं विरक्त तारै जू।
ज्यों बन करै सिंध की रक्षा, सिन्ध सु बनहि उबारै जू।।
विरक्त सु तौ भजै भगवन्तहि, गृही सु ताकी सेवा जू।
अश्व के कान बराबर दोऊ जाती सती कौ मेवा जू।।

इस तरह से सुन्दरदास ने विरक्त और गृही दो प्रकार के जीवों की कल्पना की है। असक्ति से दूर होने के बाद ही मनुष्य को विरक्ति का भाव मिलता है।

वेदान्त के अद्वैतवाद और शंकराचार्य के ब्रह्म जीव सिद्धान्त में जो बातें जीव के सम्बन्ध में कही गयी है। सुन्दरदास उन बातों को अपने को केन्द्रित नहीं करते हैं। सुन्दरदास ने विरक्त और गृही नामक जीवों पर ही विशेष बल दिया है। इसलिए सुन्दरदास के अनुसार जीवों की दो श्रेणियाँ हैं। विरक्ति के भाव को एक छन्द में सुन्दरदास ने बड़े बिस्तार से कहा है – वे कहते हैं कि कामिनी का देह एक सघन वन है। यहाँ जो भी जाता है वह त्रस्त होता है। 'सुन्दर–विलास' का यह छन्द बहुत प्रसिद्ध है।

कामिनी कौ देह मानौ कहिये सघन वन
उहाँ कोऊ जाइ सु तौ भूमि कैं परतु है।
कुंजर है गति कटि केहरि कौ भय जामैं,
बेनी काली नागनीऊँ फन कौं धरतु है।।

× × ×

सुन्दर कहत एक और डर अति तामैं
राक्षस बदन षाऊँ ही करतु है।।[7]

आसक्ति का ऐसा वर्णन प्रायः सभी सन्त कवियों ने किया है। एक–दूसरे छन्द में सुन्दरदास मनुष्यों को चेतावनी देते हैं कि वह जितना ही सम्पत्ति के लोभ में पड़ता है उसकी तृष्णा उतनी ही प्रबल हो जाती है। परिग्रह और अपरिग्रह दो भाव है। परिग्रह से मनुष्य ब्रह्म विचार या भक्ति से बहुत दूर हो जाता है।

देश विलाइति हाथी घोरै। ज्यौं–ज्यौं बाधैं त्यौं–त्यौं थोरे।
करि संतोष न बैठे हारी। अइया मनुषहु बुझि तुम्हारी।
संचि संचि करि राषी माया। औरहि दिया न आपु न षाया।।
हाथ झारि ज्यौं चल्यौ जुआरी। अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी।।

कुल मिलाकर सुन्दरदास ने जीवों के लिए दो प्रकार के रास्तों का उल्लेख किया है। एक आसक्ति का मार्ग दूसरा विरक्ति का मार्ग। विरक्ति के मार्ग से ही ब्रह्म प्राप्त होता है। आसक्ति के मार्ग से जीव का विघटन होता है।

सन्त कवियों ने जगत के बारे में बहुत व्याख्या की है लेकिन वह बहुत तर्कसंगत नहीं है। उन्होंने संसार की नश्वरता को प्रमाणिक माना है। ऐसा मानकर वे जगत की अप्रामाणिक को सिद्ध करना चाहते हैं। जीवन का अन्ति लक्ष्य मृत्यु को माना है। आधुनिक पश्चिमी दर्शन के अस्तित्ववादियों ने भी यही भूल की है। इनका कहना है कि जीवन का अर्थ जीवन में ही खोजना पड़ता है। इस बारे में एक सूत्र दार्शनिक विचारक जे. कृष्णमूर्ति ने दिया है कि – "भागो नहीं, बल्कि जागो।"[8] गृहस्थ को भी इन लोगों ने बुरा नहीं माना है बल्कि कहा है किइसकी संगतियों और विसंगतियों को जानो और समझो। यह जब गृहस्थ धर्म का चुनाव है, निर्णय है। इसे तुम्हीं ने स्वीकारा है। अगर गृहस्थ धर्म के अलावा विरक्त धर्म मान लिया जाय तो यह भी बुरा नहीं है। यह मन है, उसका विकल्प है। शंकर के अद्वैत दर्शन का प्रभाव सन्तों पर बहुत अधिक पड़ा है।

सुन्दरदास ने अपने पूरे ग्रन्थों में जगत का मिथ्या कहा है। सुन्दर विलास में उन्होंने कहा है कि – सब कुछ झुठ है –

झूठा सोवै जागै झूठा जागै झूठा झूझै झूठा भाजै।
झूठा पीछे झूठा लागै झूठी झूठी मानी है।
झूठा लिया झूठा दीया झूठा खाया झूठा पीया
झूठा सौदा झूठे कीया झूठा प्रानी है।[9]

इस प्रकार कुल मिलाकर जीव के सभी संसार के कर्म झूठे हैं। व्यक्ति के कर्म की तीन अवस्थाएँ बतायी गयी हैं – साधनावस्था, साध्यावस्था और सिद्धावस्था। अधिकतर सन्तों ने सिद्धावस्था में होकर उसी से संसार को देखा है। साधनावस्था और साध्यावस्था का संसार उनकी आँखों में समाहित हो गया है।

संदर्भ :

1- सुन्दर ग्रन्थावली, भाग–2 अथ देह मलीनता गर्व प्रहार कौ अंग, पृष्ठ 435–437.
2- सुन्दर ग्रन्थावली, भाग–2, पृष्ठ 909
3- सुन्दर ग्रन्थावली, भाग–2, पृष्ठ 590
4- सुन्दर ग्रन्थावली, भाग–2, पृष्ठ 590
5- सुन्दर ग्रन्थावली, भाग–1, पृष्ठ 60
6- सर्वांग योग प्रदीपिका, द्वितीयोपदेश।
7- सुन्दर विलास, अथ नारी निंदा को अंग, मनहर सवैय्या।
8- सन्त कवि दर्शन, डॉ0 कैलाश मिश्र, पृष्ठ 248
9- सुन्दर विलास, सवैय्या, 25